शोध मंथन, Impact Factor 6.726 (SJIF), UGC No. 40908 ISSN: (P): 0976-5255 (e): 2454-339X
Vol. X, No.III, pp (1014-1016) July - Sep. 2019

मनुस्मृतिः आदर्श परिवार, समाज और धर्म की स्थापना के लिए एक विकल्पहीन मार्गदर्शिका

डॉ. रंजना अग्रवाल
एसोसिऐट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,
एन. के. बी. एम. जी. कॉलेज, चन्दौसी

सारांश

मनुस्मृति हिन्दू धर्म का एक प्राचीन धर्मशास्त्र (स्मृति) है।ख, यह 1776 में अंग्रेजी में अनुवाद करने वाले पहले संस्कृत ग्रंथों में से एक था। मनुस्मृति में कुल 12 अध्याय हैं जिनमें 2684 श्लोक हैं। कुछ संस्करणों में श्लोकों की संख्या 2964 है। इसकी गणना विश्व के ऐसे ग्रन्थों में की जाती है, जिनसे मानव ने वैयक्तिक आचरण और समाज रचना के लिए प्रेरणा प्राप्त की है। इसमें प्रश्न केवल धार्मिक आस्था या विश्वास का नहीं है। मानव जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति, किसी भी प्रकार आपसी सहयोग तथा सुरुचिपूर्ण ढंग से हो सके, यह अपेक्षा और आकांक्षा प्रत्येक सामाजिक व्यक्ति में होती है। विदेशों में इस विषय पर पर्याप्त खोज हुई है, तुलनात्मक अध्ययन हुआ है और समालोचनाएँ भी हुई हैं। हिन्दु समाज में तो इसका स्थान वेदत्रयी के उपरान्त है। भारत में वेदों के उपरान्त सर्वाधिक मान्यता और प्रचलन 'मनुस्मृति' का ही है। इसमें चारों वर्णों, चारों आश्रमों, सोलह संस्कारों तथा सृष्टि उत्पत्ति के अतिरिक्त राज्य की व्यवस्था, राजा के कर्तव्य, भांति–भांति के विवादों, सेना का प्रबन्ध आदि उन सभी विशयों पर परामर्श दिया गया है जो कि मानव मात्र के जीवन में घटित होने सम्भव है यह सब धर्म–व्यवस्था वेद पर आधारित है। मनु महाराज के जीवन और उनके रचनाकाल के विषय में इतिहास–पुराण स्पष्ट नहीं हैं। तथापि सभी एक स्वर से स्वीकार करते हैं कि मनु आदिपुरुष थे और उनका यह शास्त्र आदिःशास्त्र है। क्योंकि मनु की समस्त मान्यताएँ सत्य होने के साथ–साथ देश, काल तथा जाति बन्धनों से रहित हैं।

अपने इस लेख में हम मनुस्मृति के आलोक में निम्न पाँच बिन्दुओं पर विचार करेंगे –

1– भोजन के सम्बन्ध में महर्षि मनु के विचार ।

2– महर्षि मनु के अनुसार अतिथि– सत्कार।

3– ब्राह्मण के कर्तव्य ।

4– आजीविका के दस मान्य साधन ।

5– धन प्राप्ति के सात धर्मानुसार स्रोत ।

6– धर्म का आश्रय लेने का महत्त्व।

भोजन के सम्बन्ध में महर्षि मनु के विचार

महर्षि मनु के मतानुसार भोजन को प्रसन्नता पूर्वक ग्रहण करना उचित है। भोजन की

निन्दा कभी नहीं करना चाहिए। जूठा भोजन स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। आवश्यकता से अधिक भोजन करना असामाजिक कृत्य है।

पूजयेदशनं नित्यमद्याच्चौतदकुत्सयन्।
दृष्ट्वा हृष्येत्प्रसीदेच्च प्रतिनन्देच्च सर्वशः।।

मनुस्मृति २–५४ .1

भोजन के पदार्थों का 'यह प्राणार्थक भोज्य है' ऐसा ध्यान करके आदर करे। उसकी निन्दा न करे। उसे पूरा खाये, जूठा भोजन छोड़े नहीं। भोजन को देखकर हर्शित हो। मन को प्रसन्न रखे। भोजन करने के पश्चात् भी उसका प्रतिनन्दन करे कि यह अन्न मुझे सर्वदा प्राप्त हो।

भोजन का सत्कार इसलिए करना चाहिए क्योंकि वह अद्य अर्थात् खाने योग्य है। इसका तात्पर्य यह है कि खाने योग्य पदार्थ ही खाना चाहिए अखाद्य भोजन कदापि नहीं।

आज हमें भरपेट भोजन मिल गया है इसलिए भोजन के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना, भोजन का प्रतिनन्दन करना कहा जाता है।

पूजितं ह्यशनं नित्यं बलमूर्जं च यच्छति।
अपूजितं तु तद् भुक्तमुभयं नाशयेदिदम्।।

मनुस्मृति २–५५ .2

जो भोजन नित्य सत्कारपूर्वक प्रसन्न मन से किया जाता है, वह बल और वीर्य, ऊर्जाशक्ति प्रदान करता है। अपूजित (तिरस्कृत) अन्न को खाने से वह इन दोनों बल और वीर्य का नाश कर देता है।

नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चौव तथान्तरा।
न चौवात्यशनं कुर्यान्न चोच्छिष्टः क्वचिद् व्रजेत्।।

मनुस्मृति २–५६. .3

जूठा अन्न किसी को खाने को न दे। स्वयं भी किसी का जूठा भोजन न खाए। बीच में (प्रातः और सायं के) भोजन न करे। बहुत अधिक भोजन न करे और जूठे मुँह (बिना अँचवन अथवा कुल्ला किये) कहीं न जाए।

जूठा भोजन प्रायः रोगाणुओं का सञ्चरण करता है। जूठे मुँह यहाँ वहाँ घूमना से भी रोग के कीटाणुओं का फैलना सम्भव है। जूठे व्यक्ति को भी वायुमण्डल में उपस्थित कीटाणुओं से क्षति होना सम्भव है।

अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम्।
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत्।।

मनुस्मृति २–५७. .4

अति भोजन आरोग्य, आयु, स्वर्ग (सुख) पुण्य के लिए अहितकर है। अधिक भोजन लोकनिन्दित है। इस कारण उसे (अधिक भोजन करने को) त्याग देना चाहिए।

अधिक भोजन, भोजन करने वाले को अजीर्णादि रोग तो उत्पन्न करता ही है, साथ ही अपनी आवश्यकता से अधिक खाना, अन्य व्यक्तियों का भाग खाने के समान है। इससे समाज

में असन्तोश उत्पन्न होता है। भूखे व्यक्तियों के मन में अधिक भोजन करने वाले के प्रति रोश, द्वेश और घृणा उत्पन्न होती है।

महर्षि के ये विचार आज भी मनन करने और आचरण में लाने योग्य हैं।

मनुस्मृति में अतिथि–सत्कार

'अतिथि देवो भव' यह वाक्यांश सबने सुना होगा। इस पर आचरण करना अच्छा माना जाता है। परन्तु इसमें कुछ व्यवहारिक कठिनाइयाँ भी हैं।

महर्षि मनु ने इस महत्वपूर्ण सामाजिक सदाचार का व्यवहारिक वर्णन किया है। यह वर्णन अत्यन्त रोचक तो है ही, साथ ही समाज को आवश्यक सावधानी रखने के प्रति सचेत भी करता है।

संप्राप्ताय त्वतिथये प्रदद्यादासनोदके।
अन्नं चौव यथाशक्ति सत्कृत्य विधिपूर्वकम्।।

मनुस्मृति 3–99 .5

घर आये हुए अतिथि के लिए आसन, पैर धोने के लिए जल और अपनी शक्ति के अनुसार अन्न विधिपूर्वक सत्कार करके देना चाहिए।

इससे यह समझना चाहिए कि बाहर से आये हुए अतिथि को, उसके पैर ठीक से धुलवाकर ही अपने घर में प्रवेश कराना चाहिए। यह मार्गस्थ दोशयुक्त पदार्थों से पैरों को स्वच्छ करने के लिए किया जाता है।

विधिपूर्वक पद को समझने के लिए हम यहाँ पर महर्षि मनु का ही एक अन्य श्लोक उद्धृत करते हैं।

न वै स्वयं तदश्नीयादतिथिं यन्न भोजयेत्।
धन्यं यशस्वमायुष्यं स्वर्ग्यं वाऽतिथिपूजनम्।।

मनुस्मृति ३–१०६ .6

जो पदार्थ (घी, दूध, मिष्टान्न, फल इत्यादि) अतिथि को नहीं खिलाया जा रहा है, वह स्वयं भी न खाए। अतिथि का पूजन (भोजनादि से सत्कार) करना धन, यश, आयु और स्वर्गादि का निमित्त होता है।

ऐसा कभी नहीं करना चाहिए कि अतिथि को सूखी रोटियाँ परोसीं जाएँ और स्वयं यथेष्ट घी लगाकर भोजन करे। स्वयं तो दूध के साथ भोजन करे और अतिथि को दूध न दे।

यदि घर में दूध–घी पर्याप्त नहीं है तो अतिथि के साथ भोजन करते समय, स्वयं भी ये पदार्थ न खाए। ऐसा करने से गृहस्थ का अभिमान तथा अतिथि के प्रति अनादर प्रकट होता है तथा अतिथि भी अपमान और उपेक्षा अनुभव करता है।

महर्षि की यह व्यवस्था आधुनिकतम सभ्य समाज जीवन में भी आदर सहित देखी जाती है।

तृणानि भूमिरुदकं वाक्चतुर्थी सूनृता।
एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन।।

मनुस्मृति ३–१०१ .7

तृण (बैठने और सोने के लिए घास अथवा चटाई), भूमि (बैठने के लिए स्थान), जल (हाथ–पैर धोने और पीने के लिए) और मधुर वचनय इनसे रहित तो किसी भी गृहस्थ का घर नहीं होता।

अतः अन्नादि के अभाव में इनसे तो अतिथि का सत्कार किया ही जा सकता है। महर्षि का कहना समझकर कोई भी व्यक्ति अतिथि सत्कार से मना नहीं कर सकता। निर्धन से निर्धन व्यक्ति भी अपने घर आये व्यक्ति को भोजनादि भले न दे सके, पर इस श्लोक में वर्णित उसका सत्कार तो कर ही सकता है।

एकरात्रं तुनिवसन्नतिथिर्ब्राह्मणः स्मृतः।
अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते।।

मनुस्मृति ३–१०२. .8

गृहस्थ के घर एक रात्रि के लिए ठहरने वाला ब्राह्मण, अतिथि कहा जाता है। (अन्य सम्बन्धी (त्मसंजपअमे) और सामाजिक व्यक्ति किसी न किसी कार्य से आते हैं, वे गृहस्थ से परस्पर स्वार्थ से आबद्ध रहते हैं। अतः वे अतिथि नहीं माने जाते।) उसके आने की कोई तिथि नियत नहीं होती। इसलिए उसे अतिथि कहा जाता है।

इस श्लोक में महर्षि सावधान करते हैं कि सभी व्यक्ति, अतिथि नहीं होते। जो मनुष्य अतिथि नहीं हैं उनसे गृहस्थ को अपने विवेक से व्यवहार करना चाहिए।

नैकग्रामीणमतिथिं विप्रो साङ्गतिकं तथा।
उपस्थितं गृहे विद्याद् भार्या यत्राग्नयोऽपि वा।।

मनुस्मृति ३–१०३. .9

(अतिथि किसे कहा जाए इस पर महर्षि मनु कहते हैं) जो एक ही गाँव का रहने वाला हो, जो विचित्र कथाओं, गान तान और परिहास (चुटकुले, हँसी मजाक करके) आजीविका चलाने वाला हो, भार्या और अग्नि से युक्त (सुविधा सम्पन्न) हो ऐसे विप्र को अतिथि नहीं मानना चाहिए।

इस श्लोक में गृहस्थों कै सावधान किया गया है कि जिस चाहे व्यक्ति को अतिथि मानकर घर में प्रवेश नहीं देना चाहिए। जो सदा दूसरों के घर भोजन करने का स्वभाव बनाए हुए हैं, वे अतिथि नहीं है, ऐसे भोजन भट्ट अतिथि सत्कार के पात्र भी नहीं हैं।

उपासते ये गृहस्थाः परपाकमबुद्धयः।
तेन ते प्रेत्य पशुतां व्रजन्त्यन्नादिदायिनाम्।

मनुस्मृति ३–१०४. .10

जो निर्बुद्धि गृहस्थ आतिथ्य (अतिथि सत्कार) के लोभ से दूसरे ग्राम में जाकर अन्न देने वालों के घर में परान्न भोजन करता है वह मर कर परान्न खाने के कारण अन्नदाता के यहाँ पशु बनता है। (अर्थात् बैल, घोड़ा, कुत्ता इत्यादि बनकर उस ऋण चुकाता है।)

अप्रणोद्योऽतिथिः सायं सूर्योढो गृहमेधिना।
काले प्राप्तस्त्वकाले वा नास्यानश्नन्गृहे वसेत्।।

मनुस्मृति ३–१०५. .11

सायंकाल घर पर आये हुए अतिथि को गृहस्थ मना न करे। वह समय पर (घर के लोगों

के भोजन करने समय अथवा उससे पहले) आवे अथवा असमय पर (घर के लोगों के भोजन कर लेने के पश्चात्) आवे, परन्तु बिना भोजन के वहाँ नहीं रहे। (जिसके यहाँ ठहरे, वह गृहस्थ उसे भोजन अवश्य करावे)

आशा है हमारे जिज्ञासु अध्येताओं को महर्षि की यह अतिथि सम्बन्धी व्यवस्था, आज भी उपयोगी होगी।

ब्राह्मण के कर्त्तव्य

ब्राह्मण, समाज का नेतृत्व करने के लिए है। उसे विद्वान्, तपस्वी, अपरिग्रही, परोपकारी और निडर होना चाहिए। ऐसा किस उपाय से हो सकता है? इसके लिए महर्षि मनु ने ब्राह्मण के कुछ कर्त्तव्य निर्धारित किये हैं।

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहं चौव ब्राह्मणानामकल्पयत्।।

मनुस्मृति 1–88 .12

अध्यापन–अध्ययन, यज्ञ करना–कराना, दान देना और दान लेना ये ब्राह्मणों के कर्त्तव्य निर्धारित किये गये हैं।

इन कर्त्तव्यों में से यज्ञ करना और कराना इस युग में कुछ कठिन हो गया है। शेष चार कर्त्तव्य तो ब्राह्मण आज भी कर सकते हैं। कुछ ब्राह्मण ऐसा कर भी रहे हैं।

आजीविका के लिए वह भले ही कोई अन्य कार्य, जो धर्म से अविरुद्ध हो, करें परन्तु उसे ये अपने इन कर्त्तव्यों का पालन तो करना ही चाहिए।

ये तो ब्राह्मण के लिए कर्त्तव्य कहे गए हैं।

भगवद्गीता में इससे कुछ भिन्न बात कही गई है। उसमें ब्राह्मण के कर्त्तव्य नहीं, स्वाभाविक कर्मों का वर्णन किया गया है। भगवद्गीता का कहना है कि जो ब्राह्मण होगा, उसके सहज स्वभाव से ही ये कर्म प्रकट होते रहते हैं। मनुस्मषति के छह कार्य तो उसके कर्त्तव्य हैं, जो उसे करना चाहिए। भगवद्गीता में बताए गए कर्मों को करने में उसे विशेष यत्न नहीं करना पड़ता। यह उसकी सहज वृत्ति ही है।

भगवद्गीता के नौ स्वाभाविक कर्म इस प्रकार हैं।

शमोदमस्तपःशौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्मस्वभावजम्।।

भगवद्गीता 18–42. .13

ब्राह्मण के निम्न नौ कर्म उसके स्वभाव से उत्पन्न होते हैं।

शम – मन का निग्रह करना अर्थात् मन को अपने वश में रखकर उसे अपने अनुसार चलाना।

दम – इन्द्रियों का दमन करते रहना। दसों इन्द्रियों को अपने नियन्त्रण में रखकर उनसे काम लेना।

तप – श्रद्धासहित धर्म और कर्त्तव्य पालन करना और इनके लिए कष्ट सहन करने हेतु सर्वदा तत्पर रहना।

शौच – जलादि से बाह्य शरीर तथा वस्त्रादि की और सत्सङ्ग, स्वाध्याय से आन्तरिक मन बुद्धि की स्वच्छता बनाए रखना।

क्षान्ति – अन्य व्यक्तियों के अपराधों को सामर्थ्य होते हुए भी प्रसन्नता पूर्वक क्षमा कर देना।

आर्जव – आचरण और विचारों की सरलता। कपटपूर्ण आचरण और कपटपूर्ण विचारों का अभाव होना।

ज्ञान – संसार, संसार के प्राणियों और परमात्मा का यथेष्ट और यथार्थ ज्ञान।

विज्ञान – इस संसार और प्राणियों के प्रति परमात्मा की क्या भूमिका है, इसका ज्ञान होना।

आस्तिक्य – वेद, परमात्मा और सदाचार के प्रति आस्तिक भाव अर्थात् सकारात्मक भाव रखना

जिस व्यक्ति के स्वभावगत गुणों में उपर्युक्त नौ गुण विद्यमान हैं, उसे ब्राह्मण कहा जाता है।

ऐसे ब्राह्मण के लिए ही महर्षि मनु ने मनुस्मृति में उपर्युक्त छह कर्त्तव्यों को करने के लिए कहा है।

मनुस्मृति – आजीविका के दस मान्य साधन

नागरिकों के जीवन यापन हेतु धन की आवश्यकता पड़ती है। जिस कार्य से जीवित रहने की सुविधाएँ उपलब्ध हो सकें, उनको आजीविका के साधन कहते हैं। समाज के विभिन्न व्यक्तियों के पास विभिन्न प्रकार की क्षमताएँ और योग्यताएँ होतीं हैं। शिक्षा के द्वारा उन क्षमताओं का परिष्कार करके उनका विकास कर लिया जाता है।

सम्पूर्ण समाज एक ही प्रकार से आजीविका नहीं चला सकता। ऐसा करना न सम्भव है और न व्यवहारिक।

मनुस्मृति में महर्षि मनु ने दस प्रकार की आजीविकाओं का उल्लेख किया है। उनसे सभी मनुष्यों का किसी न किसी प्रकार जीवन चल सकता है।

देखिए मनुस्मृति का यह श्लोक –

विद्या शिल्पं भृतिः सेवा गोरक्ष्यं विपणिः कृषिः।
धृतिर्भैक्ष्यं कुसीदं च दश जीवनहेतवः।।

मनुस्मर्षति 10–116 .14

विद्या, शिल्प, भृति, सेवा, गोरक्षण, व्यापार, धैर्य, भिक्षा और सूद ये दस जीवन निर्वाह के हेतु हैं अर्थात् आजीविका के साधन हैं।

विद्या – वेदविद्या अर्थात् संसार की नाना प्रकार की क्रियाविधियों को जानने और समझाने की विद्या (इसमें शिक्षा, कल्प अर्थात् इतिहास, व्याकरण, ज्योतिष अर्थात् खगोल और अन्तरिक्ष विज्ञान, निरुक्त अर्थात् वेद के पदों को समझना) , वैद्य, तर्क, विष निराकरण इत्यादि। यह विद्या प्रायः ब्राह्मण सीखते थे। इससे समाज उनकी आजीविका हेतु आवश्यक वस्तुएँ देता था।

शिल्प – सभी प्रकार की कला शिल्प, सभी प्रकार के निर्माण, वस्त्रादि को सुगन्धित करना इत्यादि। इन लोगों को आज की भाषा में इंजीनियर्स, आर्ट डिजाइनर, इत्यादि कहते हैं। सभी प्रकार

के कुटीर और उद्योग, नाट्य कला, नृत्य, गायन, वादन, अभिनय, विज्ञापन जैसी सभी विधाएँ इसी के अन्तर्गत हैं। योद्धा लोग, अपनी युद्ध कला के प्रतिकार में धन लेकर आजीविका चलाते थे।

भृति – प्रैष्यभावेन वेतनग्रहणम् अर्थात् संवाद प्रेषण के प्रतिकार में वेतन लेना। जैसे विभिन्न श्रीमानों, राजपुरुषों के दूत बनकर, सन्देश लाना–ले जाना। व्यापारिक सन्देश भी इसी के अन्तर्गत हैं। इसमें विषय को समझना, उसका सटीक और समुचित प्रस्तुतीकरण करने हेतु उत्तम भाषा का ज्ञान आवश्यक होता था। यह सन्देश वाहक, सन्देश प्रेषक का दास (नौकर) नहीं होता था। यह कार्य भी प्रायः ब्राह्मण ही करते थे।

सेवा – पराज्ञासम्पादनम्। दूसरे की आज्ञा का अनुपालन करना और उसके उपलक्ष में धन लेना। सभी सरकारी और निजी सेवाएँ (नौकरियाँ) इसी के अन्तर्गत आतीं हैं। इसके सिवाय हजारों प्रकार की दैनिक मजदूरी भी इसी के अन्तर्गत है। यह कार्य, प्रायः शूद्र लोग करते थे। आज भी, जो लोग यह आजीविका अपनाते हैं, वे शूद्र कहे जा सकते हैं।

गोरक्षण – पशुपाल्यम्। गाय, भैंस आदि विभिन्न पशुओं का पालन करना और उससे आय प्राप्त करना।

विपणि – वस्तुओं का क्रय विक्रय करने का व्यवसाय, व्यापार कर आय प्राप्त करना। कृषि से भिन्न, यह आय का उत्तम साधन माना जाता था।

कृषि – भूमि में बीज बोकर अनाज अथवा अन्य वनस्पति आदि का उत्पादन कर, आय प्राप्त करना। समाज का बहुत बड़ा वर्ग इसमें संलग्न रहता था।

धृति – धैर्य धारण करना अर्थात् न्यून आय में भी संतोषपूर्वक, जीवन निर्वाह कर लेना। जिनमें अर्थोपार्जन की विशेष क्षमता नहीं है, वे धैर्यपूर्वक अपनी क्षमता को विकसित करते थे अथवा धीरे–धीरे धन एकत्रित करके वाणिज्यादि कर सकते थे।

भैक्ष्य – भिक्षाटन करते हुए जीवन निर्वाह करना। जीवन निर्वाह की यह विधि, अपरिग्रही ब्राह्मणों और वीतरागी जनों के लिए है।

कुसीद – अपने पास उपलब्ध धन को, उपयुक्त जनों को देकर, उनसे सूद लेना। यह भी जीवन निर्वाह हेतु, आय का साधन है।

यहाँ पर यह उल्लेखनीय बात ध्यान देने की है कि सूद से प्राप्त आय के द्वारा आजीविका चलाना, ब्राह्मण और क्षत्रिय के लिए निषिद्ध है। अर्थात् वे सूद से आय प्राप्त नहीं कर सकते। देखिए यह श्लोक –

ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि वृद्धिं नैव प्रयोजयेत्।
कामं तु खलु धर्मार्थं दद्यात्पापीयसेऽल्पिकाम्।।

मनुस्मृति 10–117. .15

ब्राह्मण तथा क्षत्रिय सूद के लिए धन को कभी भी नहीं देवें, किन्तु इस निकृष्ट कर्म से धर्म के लिए थोड़ी सूद पर धन को देवें।

महर्षि मनु, ब्राह्मण और क्षत्रिय के लिए सूद लेने को निकृष्ट कार्य भी मानते हैं।

तात्पर्य यह है कि किसी निर्धन व्यक्ति को अपना व्यवसाय चलाने हेतु, धर्म की दृष्टि से बहुत ही अल्प सूद पर कुछ काल के लिए धन दे सकते हैं। उसके पश्चात् वे अपना धन वापिस ले लेवें।

हमारा मत है कि आजीविका के इन दस साधनों में, वर्तमान में उपलब्ध सभी साधन भी सम्मिलित हैं।

मनुस्मृति – धनप्राप्ति के सात धर्मानुसार स्रोत

सभी देशों की सरकारें चाहतीं हैं कि उनके नागरिकों के पास काला धन न हो। जो धन उन देशों के विधान के अनुसार प्राप्त न किया गया हो वह धन अवैध अथवा काला धन है। धन सम्बन्धी ये विधान सभी देशों में समान नहीं हैं।

महर्षि मनु ने धन के आगमन के साथ स्रोत बताए हैं। ये विश्वव्यापी सिद्धान्त हो सकते हैं। सभी देशों में मान्य किये जा सकते हैं। देखिए –

सप्तवित्तागमा धर्म्या दायो लाभः क्रयो जयः।
प्रयोगः कर्मयोगश्च सत्प्रतिग्रह एव च।।

मनुस्मृति 10–115 .16

धनागमन के ये सात स्रोत धर्मानुकूल कहे गये हैं। दाय, लाभ, क्रय, जय, प्रयोग, कर्मयोग और सत्प्रतिग्रह।

दाय – धर्मयुक्त पैतृक सम्पत्ति का भाग।

लाभ – मूलधन, मित्रों से, सम्बन्धी (रिश्तेदारों) आदि से प्राप्त। इसमें ससुराल से प्राप्त धन, निष्ठापूर्वक सेवा करने से स्वामी द्वारा अपनी सम्पत्ति पर अधिकार देना जैसे धन समझे जा सकते हैं।

क्रय – अपने धन अथवा अपनी आय से क्रय की गई सम्पत्ति, स्वर्ण, रत्नादि जो कालान्तर में बहुत मूल्यवान हो सकते हैं।

जय – धर्मपूर्वक किये गये युद्ध में विजय से प्राप्त। (यह केवल राजाओं अथवा योद्धाओं के लिए वैध)

प्रयोग – अपने धन का दूसरों को प्रयोग करने हेतु देने से प्राप्त आय। जैसे ब्याज, व्यवसाय में भाग, शेयर मार्केट से प्राप्त धन इसमें सम्मिलित हो सकता है।

कर्मयोग – खेती, पशुपालन, व्यापार, उद्योग इत्यादि से प्राप्त धन।

सत्प्रतिग्रह – शास्त्रोक्त विधि से प्राप्त दान से आय (यह ब्राह्मण अथवा लोकोपकार में लगे लोगों के लिए वैध)

इन सात स्रोतों के सिवाय, धनप्राप्ति के अन्य सभी स्रोतों को महर्षि मनु धर्मविरुद्ध मानते हैं। आज की भाषा में कहें तो ऐसा धन काला धन है।

6– मनुस्मृति – धर्म का आश्रय लेने का महत्त्व– मनुस्मृति में धर्म के दस लक्षण बताये गये हैं –

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।

मनुस्मृति 6–92

अर्थ दृ धृति (धैर्य), क्षमा (अपना अपकार करने वाले का भी उपकार करना), दम

(हमेशा संयम से धर्म में लगे रहना), अस्तेय (चोरी न करना), शौच (भीतर और बाहर की पवित्रता), इन्द्रिय निग्रह (इन्द्रियों को हमेशा धर्माचरण में लगाना), धी (सत्कर्मों से बुद्धि को बढ़ाना), विद्या (यथार्थ ज्ञान लेना). सत्यम (हमेशा सत्य का आचरण करना) और अक्रोध (क्रोध को छोड़कर हमेशा शांत रहना)। यही धर्म के दस लक्षण है।

मनुष्य और पशुओं के जीवन में बहुत सी समानताएँ हैं, केवल धर्म ही, मनुष्य को पशुओं से भिन्न और विलक्षण सिद्ध करता है।

धर्म का तात्पर्य वैसा नहीं है, जैसा आजकल समाज में समझा जा रहा है। आजकल हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई इत्यादि शब्दों से, धर्म को समझा जाता है।

धर्म जैसे श्रेष्ठ शब्द का, अज्ञानियों और स्वार्थी पुरुषों ने, दुरुपयोग और दुष्प्रचार करके वैसे ही निन्दनीय बना दिया है, जैसे सम्प्रदाय, पुङ्गव, गुरु इत्यादि शब्दों को निन्दनीय और हास्यास्पद बना दिया है।

यहाँ, धर्म से तात्पर्य है, सद्विचार, सदाचार और सत्कर्म। मनुष्य, धर्म को धारण करता है, इसलिए इसे धर्म कहते हैं। जब मनुष्य धर्म की रक्षा करते हैं, तब ऐसा रक्षित धर्म, उसकी रक्षा करता है। धर्मो रक्षति रक्षितः।

यह धर्म ही है, जो इस संसार में सबको समुन्नति का अवसर देता है और अन्त में, परम कल्याण भी करता है। यतोऽभ्युदयनिःश्रेयस्सिद्धिः स धर्मः। जिससे इस लोक में सर्वतोभावेन सबका अभ्युदय और निःश्रेयस् (परम कल्याण) सिद्ध हो सके, वही धर्म है।

महर्षि मनु, इसी धर्म का सञ्चय करके सभी मनुष्यों के कल्याण का मार्ग बताते हैं। देखिए मनुस्मृति के ये श्लोक –

धर्मं शनैः सञ्चिनुयाद्वल्मीकमिव पुत्तिकाः।
परलोकसहायार्थं सर्वभूतान्यपीडयन्।।

मनुस्मृति 4–238 .17

जिस प्रकार दीमक वल्मीक (बावीं) का सञ्चय करते हैं, उसी प्रकार परलोक की सहायता के लिए, सभी जीवों को पीड़ा न देते हुए, धीरे धीरे धर्म का सञ्चय करे।

नामुत्र सहायार्थं पिता माता च तिश्ठतः।
न पुत्रदारा न ज्ञातिधर्मस्तिष्ठति केवलः।।

मनुस्मृति 4–239 .18

परलोक में पिता, माता, पुत्तर, स्त्री और ज्ञाति (जातिसम्बन्धी अथवा परिचितादि) सहायता के लिए नहीं रहते, केवल धर्म ही (उस समय सहायता के लिए) रहता है।

एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते।
एकोऽनुभुङ्क सुकृतमेक एव च दुष्कृतम्।।

मनुस्मृति 4–240 .19

प्राणी अकेला ही उत्पन्न होता है और अकेला ही मरता है, अकेला ही पुण्य कर्मों के फल को भोगता है और अकेला ही पाप कर्मों के फल भोगता है।

मृतं शरीरमुत्सष्ज्य काष्ठलोष्ठसमं क्षितौ।
विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति।।

मनुस्मृति 4–241 .20

महर्षि मनु का आग्रह है कि मनुष्य को न तो कभी धर्म का परित्याग करना चाहिए और न ही इससे निरपेक्ष रहना चाहिए।

इस प्रकार हमने यह लिखने का प्रयास किया है कि मनुस्मृति में प्रतिपादित जीवनमूल्य, एक आदर्श परिवार, समाज और धर्म की स्थापना के लिये एक विकल्पहीन मार्गदर्शन हैं।

सन्दर्भ

1. मनुस्मृति 2/54
2. मनुस्मृति 2/55
3. मनुस्मृति 2/56
4. मनुस्मृति 2/57
5. मनुस्मृति 3/99
6. मनुस्मृति 3/10
7. मनुस्मृति 3/101
8. मनुस्मृति 3/102
9. मनुस्मृति 3/103
10. मनुस्मृति 3/104
12. मनुस्मृति 1/686
11. मनुस्मृति 3/105
13. मनुस्मृति 18/42
14. मनुस्मृति 10/11
15. मनुस्मृति 10/11
16. मनुस्मृति 10/11
17. मनुस्मृति 4/238
18. मनुस्मृति 4/239
19. मनुस्मृति 4/240
20. मनुस्मृति 4/2416
21. मनुस्मृति 4/2427
22. मनुस्मृति 4/243